तीसरा अध्याय

गुरू-चरणों की गंगा-यमुना

भारत की पवित्र नदियों में कोपरगाँव कस्बे में बहने वाली गोदावरी नदी भी प्राचीनकाल से बहुत ही पवित्र समझी जाती है। अनादिकाल से हमारे महान् ऋषि-मुनियों ने इस नदी के किनारे बैठकर कठोर तप किये है। सन्त ज्ञानेश्वर जी ने भी गोदावरी के पुनीत तट पर वास किया था। कोपरगाँव के निकट गोदावरी नदी के पार लगभग नौ मील पर शिरडी गाँव बसा है। महाराष्ट्र के गाणगापुर, नृसिंह वाडी तथा औंदुंबर स्थानो की जिस प्रकार पवित्र

तीर्थो की रूप में प्रतिष्ठा हुई है, उसी प्रकार श्री साई बाबा के चरण धूलिस्पर्श से शिरडी भी पवित्र तीर्थस्थल बन गया है । सन्त दामाजी ने पंढरपूर के समीपस्थ मंगलवेढे को पवित्र पद प्राप्त कराया, श्री समर्थ रामदास स्वामीजी ने सज्जनगड में हिन्दु-धर्म की पताका फहरा कर उसे अमर कर दिया, श्री नृसिंह सरस्वतीजी ने नरसोबा की वाडी में अन्त तक निवास कर उस वाडी को ही एक अत्यन्त पवित्र तीर्थ स्थल की पदवी प्रदान करा दी, उसी प्रकार श्री सद्गुरू साई महाराज के छः दशाब्दी तक निरन्तर पुनित वास ने ओर उनकेभक्तों का कल्याण करने वाली सहस्रों लीलाओं ने शिरडी को भी दक्षिण का पावन काशी क्षेत्र बना दिया ।

श्रीसाईबाबा के कारण ही शिरडी गाँव को असाधारण महत्त्व प्राप्त हुआ है। शिरडी के वयावृद्ध लोग कहते है कि तरूणावस्था में श्री साई महाराज अत्यन्त सुन्दर और तेजस्वी दिखाई देते थे । देखते-देखते ही वे किसी भी व्यक्ति को अपने अद्भुत व्यक्तित्व से मोहित कर लेते थे। वैसे उनका स्वभाव बडा उग्र था । आरम्भ में तो वे किसी व्यक्ति को अपने समीप तक भी खडा नही होने देते थे । धनवान् या राजप्रसाद में पले हुए लोगो की वे किंचित् भी परवाह नही करते थे । पर निर्धन तथा सच्चरित्र भक्तों के साथ वे अत्यंत प्रेम और ममता का बर्ताव करते थे। दुर्जय एवं दुस्तर संसार पर उन्होंने पूर्ण विजय प्राप्त की थी । श्री साई कभी कभी ऊपर से क्रोधावस्था में दिखाई देते थे, परंतु भीतर से तो वे दया और शांति के अगाध सागर थे। उनके हृदय में ज्ञान-भंडार मानो मूर्तिमंत होकर विराजता था । वैष्णवों की उनमें प्रगाढ श्रद्धा थी। दान देने में वे मानो कर्ण के अवतार थे । उनकी गतिविधि एक चमत्कारी, उन्मत्त व्यक्ति के सदृश प्रतीत होती थी; क्योंकि वे सदैव आत्मस्वरूप में ही निमग्न रहते थे । ऐहिक, जड एवं नाशवान् वस्तुओं में उनकी आस्था कभी नही देखी गई । उनका अन्तरंग स्वच्छ जल के सरोवर की भाँति शांत और निर्मल था, जिसका कोई भी भक्त स्वतन्त्रतापूर्वक पान कर सकता था ।

निर्धन - धनवान् के भेद-भाव से श्री साई महाराज आकाश वत् ही अलिप्त रहते थे। उनके मुख से निकला हुआ प्रत्येक शब्द अत्यंत प्रभावशाली, मधुर एवं संजीवनी की भाँति ही होता था। वे सब प्रकार के लोगों में मिलजुल कर रहते थे। कथा-किर्तन सुनने के लिए भी वे निर्दिष्ट स्थान पर चले जाते थे और कोई भक्त बुलाता था तो गजल-कव्वालियों को भी बडे प्रेम-भाव से सुनने बैठ जाते थे। यही नही, गाँव के लोक-नृत्यों तथा नाच-तमाशों में भी वे उपस्थित रहते थे। पर उनका अपनी चित्तवृत्तियों पर ऐसा कडा नियंत्रण था कि उनका मन एक क्षण के लिये भी चंचल नही होता था। अनन्त विशाल सागर की भाँति उनका हृदय भी अत्यंत विशाल एवं अगाध था। शिरडी छोड कर वे कभी बाहर नही गये, फिर भी संसार के सारे व्यवहार और घटनाओं का उन्हे पूर्ण ज्ञान रहता था।

श्री साई महाराज कें दरबार में मूर्तिमंत जगदम्बाजी तथा सरस्वतीजी का सदैव वास रहता था। भक्तों को वे नित्य सैकडो बाते बताते थे और उस स्थिती में ही समाधि का आनन्द भी लेते थे। द्वारकामाई में प्रज्वलित धूनी के सम्मुख दीवार के सहारे जब श्री साई महाराज शांत चित्त से ध्यान-मग्न हो बैठते थे, तब वे पूर्णब्रम्ह-सिद्ध अवस्था में रहते थे; तथापि भक्तों को अपनी इस अवस्था का आभास तक नही होने देते थे। ''मै केवल साधक अवस्थामे ही हूँ।'' ऐसा दिखाने का वे प्रयत्न करते थे। श्री साई महाराज के नेत्रों में कुछ ऐसा दिव्य तेज था कि सामने आये किसी भी व्यक्ति के मन में छिंपी हुई दुर्भावनाएँ या पापवासनाएँ उनकी दृष्टी के एक ही कटाक्ष से कपूर की भाँति उड जाती थी और वह व्यक्ति पश्चाताप की अग्नि से ध्वस्त श्री साई के चरणों में अपना मस्तक झुका देता था।

श्री साईबाबा की एक विशेषता यह थी कि वे प्रत्येक भक्त को उसके इष्ट देवता के अनुरूप ही दिखाई देते थे। श्री साई किसी को गोकुल के मेघवर्ण श्यामसुंदर के रूप में दिखाई देते थे तो किसी 'विठ्ठल' भक्त को ऐसा चमत्कारी

दृश्य दिखाई देता था, कि मानो पंढरी के विठोबा ही कमर पर हाथ रखे खडे हो। भक्तों के इस प्रकार के अनेक अनुभव हेमाडपंत ने अपने ''श्री साई सच्चरित'' नामक ग्रंथ में वर्णित किय है।

रायबहादुर हरि विनायक साठे श्री साई महाराज के परम भक्त थे। उन्होंने श्री बाबा के दर्शनों की लालसा से शिरडी आने वाले भक्तों की सुविधा के लिए एक बडे भवन का निर्माण भी कराया है। श्री साठे जी के पास मेघा नाम का एक सेवक था। वह कट्टर शिव भक्त था। वह नित्य-नियम से शिवलिंग का पूजा करता था। एक बार रायबहादुर साठे ने मेघा की श्री साई बाबा की सेवा के लिए शिरडी भेजने की इच्छा व्यक्त की। मेघा शंकर की पूजा छोडकर एक फकीर की पूजा सेवा करने की अपने स्वामी की आज्ञा सुनकर अत्यन्त दु:खी हुआ। श्री साठे जी ने उसे बहुत समझाया और श्री साई महाराज के सच्चे स्वरूप के विषय में उसे विस्तार से उपदेश किया। फलस्वरूप मेघा का कुछ समाधान हुआ और वह शिरडी की ओर चल पडा। मेघा के द्वारकामाई के प्रांगण मे पैर रखते ही श्री साई महाराज एकदम खडे हुए और हाथ में पत्थर लेकर क्रोधित हो गरज पडे-''खबरदार, ऊपर आया तो ! चला जा। एक फकीर के पास क्यों आए हो ?''

श्री साई महाराजने प्रथम भेंट में ही मेघा के मन का भाव जान लिया और उसे शिवलिंग की पूजा करने का आदेश दे दिया। फिर तो मेघा श्री बाबा का परम भक्त बन गया। वह श्री साई के नाम का 'शंकर-शंकर' के साथ जप किया करता था।

एक बार हाईकोर्ट के एक प्रसिद्ध वकील जब श्री साई महाराज के दर्शनों के लिए गये तो श्री साई बाबा बोल उठे ''क्या कहना चाहिए ? श्री राम जय राम, जय जय राम।'' श्री बाबा ने जब तीन -चार बार इस प्रकार राम-नाम का उच्चारण किया, तब कही वकील साहब के मस्तिष्क में प्रकाश हुआ। वे राम भक्त थे और कुछ वर्ष पूर्व उनके गुरू ने उन्हें ''श्री राम जय राम,

जय जय राम मन्त्र का स्मरण दिलाकर संसार ताप त्रस्त उनकी भटकने वाली गाडी को सही मार्ग पर लाकर छोड दिया।''

इसी प्रकार ठाणा (बम्बई) से आये हुए एक सज्जन से श्री साई महाराज ने कहा, ''अरे जा, बजरंगबली की सेवा कर।'' जब वह सज्जन श्री बाबा का दर्शन कर 'साठे-वाडा' मे लौटे तो वहाँ उपस्थित लोगोंने उनसे प्रश्न किया, कि श्री बाबा ने उन्हे हनुमानजी की ही भक्ति करने का आदेश क्यो दिया? तब उन्होनें उत्तर दिया, ''श्री साईबाबा तो अन्तर्ज्ञानी सत्पुरूष है। मेरे मन का भाव जान कर उन्होंने मुझे जो उचित था, वही मार्ग दिखाया। मैं हनुमानजी का भक्त हूँ। ठाणे के प्रसिद्ध पंचमुख हनुमानजी के नित्य-नियमपूर्वक दर्शन किए बिना में अन्न भी ग्रहण नही करता।'' इन उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि जिस व्यक्ति की जिस देवता में श्रद्धा-भक्ति होती थी, श्री साई उसे ही अधिक दृढ करते थे, जैसा कि एक कवि ने श्री बाबा की आरती में कहा भी है -''हे दयाधन, जिसके मन में जैसा भाव होता है, वैसा ही तुम उसे अनुभव प्राप्त करा देते हो।''

सन् १९०९ के दिसम्बर मे एक डॉक्टर अपने मित्रों के साथ 'तमाशा' देखने शिरडी आये। 'तमाशा' इसलिए कि ये डॉक्टर राम-भक्त थे और अपने अपको स्नान-संध्या परायण कर्मकाण्डी ब्राम्हण समझते थे। उनकी छूआछूत की भावना भी बडी प्रबल थी और इसी कारण वे सोचते थे कि, ''हम उस फकीर की मस्जिद मे नही जायेंगे और न उसके हाथ का प्रसाद ही ग्रहण करेंगे।'' इस शर्त पर ही वह डॉक्टर अपने मित्र के आग्रह पर केवल सैरसपाटा करने की भावना से शिरडी आये थे। डॉक्टर साहब के मित्र का श्री बाबा में पूर्ण विश्वास था। ''किसी भी बात के लिए दुराग्रह या हठ न करके आप जो योग्य एवं उचित समझे, वही करें-''ऐसा कह कर डॉक्टर साहब का मित्र उन्हे साथ ले कर श्री साई महाराज के दर्शन कराने द्वारकामाई पहुँचा। स्वयं श्री बाबा के चरणों पर अपना मस्तक रख कर उसने जो पीछे मुड कर देखा

तो उसके मित्र डॉक्टरसाहब भी श्री बाबा के चरणों पर अपना मस्तक नमाये हुऐ थे। यह अप्रत्याशित घटना देखकर डॉक्टर साहब के मित्र ने उनसे एकान्त में पूछा-''आपने भी साष्टांग नमस्कार कैसे किया ?''डॉक्टर साहब के नेत्रों में प्रेमाश्रु छलक आये थे। भावनावश कण्ठ से अति विनीत एवं पश्चाताप भरी वाणी में बोले-''अरे, मैने तो सचमुच बडी भुल की थी। द्वारकामाई मे प्रवेश करते ही मुझे बाबा के स्थान पर श्री रामचन्द्रजी की मंगल-मूर्ति दिखाई दी। धन्य-धन्य, हे साई नाथ ! तुम्हारी लीला अगाध है। इस पामर को क्षमा करो। पुन: कभी अपने मन में ऐसे अंहकार और गर्व का संचार न होने दुंगा।''

इस प्रकार श्री साई बाबा भक्तों को कल्याण मार्ग का निर्देश करने के लिए नाना प्रकार के अत्यंत गूढ उपायों एवं स्वरूपों को काम में लाते थे। जैसे एक अष्टकोन हीरे की चमक चारों ओर भिन्न-भिन्न रंगो मे बिखरती प्रतीत होती है और रंगो की वह विविधता देखकर जिस प्रकार मन चकित, प्रफुल्लित हो उठता है वैसे ही श्री साई महाराज के भिन्न-भिन्न भावों एवं चमत्कारो को देखकर भक्त के मन में प्रसन्नता की लहरें उठती थी।

अपनी पूर्ण युवावस्था में श्री साई एक हृष्ट-पुष्ट पहलवान के सदृश दिखाई देते थे। मस्तक पर दोनों कानों तक झूलने वाले घुँघराले केशों से उनके तेज की अभिवृद्धि होती थी। मौज आने पर वे अपनी वेशभूषा में परिवर्तन भी करते थे। शिरडी में आने के बाद वे पहले तो कभी- कभी पहलवानों की भाँति तंग पायजामा और शेरवानी पहने दिखाई देते थे। उस समय शिरडी में मोहिउद्दीन नामक एक मल्ल रहता था। उसे अखाडे में उतर कर कुस्ती लडने का बडा शौक था। कुस्ती लडने के लिए उस कोई अपनी बराबरी का उत्तम 'जोड' नही मिलता तो अपने शरीर की खाज मिटाने क लिये वह अकारण ही किसी न किसी को छेडता फिरता था। ऐसे ही एक दिन साई महाराज और मोहिउद्दीन में किसी कारण वश कुछ कहा-सुनी हो गयी। देखते-देखते मामला एकदम हाथापाई पर आ गया।

दोनों में अच्छी खासी भिडन्त हो गई । मोहिउद्दीन तो एक प्रसिद्ध अनुभवी अखाडेबाज था। उसने श्री बाबा को जमीन पर पटक कर बुरी तरह से पछाडा और चारोंखाने चित्त कर दिया। कुश्ती में इस पराजय से श्री साई महाराज के मन का कायाकल्प हुआ । उसी क्षण से श्री बाबा ने अपनी वेशभूषा तथा आचरण में क्रान्तिकारी परिवर्तन किया। उन्होंने शरीर पर कफनी का परिधान ग्रहण किया, कमर पर मद्रासी लुंगी की भाँति तहमद लपेटा और मस्तक के घूँघराले बाल सफेद रूमाल से बाँध लिये । रात्रि में सोने के लिये वे टाट की बोरी के एक टुकडे या चादर का उपयोग करने लगे । और यही भिक्षुक जैसा फटा पुराना बाना उन्होंने जीवन की अन्तिम क्षणों तक अपनाये रखा । मोहिउद्दीन पहलवान के साथ हुई कुस्ती तो केवल एक निमित्त थी । इस पराजय के कारण श्री साई महाराज ने अपनी वृत्तियोंका विरोध किया, कहा जाता है कि श्री गंगागीर महाराज के साथ भी ऐसी ही एक घटना हुई थी । कुश्ती के अखाडे में पराजित होकर उन्होंने खीझ व ग्लानि से सर्वसंग परित्याग कर संन्यास-आश्रम स्वीकार किया पुणतांबे गाँव के निकट अपने आश्रम की स्थापना की ।

इस घटना के बाद श्री साई महाराज ने भी एक प्रकार से पूर्ण बैरागी वृत्ति अपना ली। स्वतंत्रता से लोगो से मिलना जुला छोडकर वे एकान्त-प्रिय हो गये। दिन में भी पर्याप्त समय ध्यानमग्न अवस्था में रहने लगे। केवल पूछे गए प्रश्नो का इने -गिने शब्दो में ही उत्तर देते थे। दिन में अधिकार नीम-वृक्ष की छाया में ध्यानमग्न बैठा करते थे। की छाया में ध्यानमग्न बैठा करते थे। जब लोग उन्हे अधिक परेशान करने लगे तो वह वहाँ से उठ कर गाँव के बाहर, नाले के किनारे, एक बबूलवृक्ष के नीचे जाकर बैठने लगे । दोपहर के समय कभी-कभी मन:स्थिती अस्वस्थ होने पर वह कईबार जल्दी-जल्दी चक्कर लगाया करते थे। उस समय उनके शरीर में इतना वेग-संचार होता

था कि किसी भी मनुष्य के लिए उनके साथ-साथ चलना नितान्त असंभव था। मन कुछ शान्त हो जाने पर वे उठ कर सीधे नीमगाँव की ओर त्रिंबकजी डेंगले के घर चले जाते थे। त्रिंकबजी अथवा बाबासाहेब और उनके कनिष्ठ बन्धु नानासाहेब, इन दोनों से श्री बाबा को बडा प्रेम था। नानासाहेब की दो पत्नियाँ थी, तथापि वे नि:सन्तान थे। दूसरी पत्नी से भी संतति होने के कोई लक्षण दिखाई नही देते थे। अन्त में श्री बाबा के मन में ही दया उत्पन्न हुई और उनके आशीर्वाद से नानासाहेब की दूसरी पत्नी ने एक पुत्र को जन्म दिया। इस कृपा-प्रसाद का यह परिणाम हुआ कि शिरडी गाँव के बाहर भी साई महाराज की किर्ति फैल गयी और दूर-दूर के लोग उनके दर्शनों के लिए आने लगे।

सर्वश्री नानासाहेब चाँदोरकर, केशव चिदंबर आदि लोग भी इसी समय शिरडी में आये और श्री साई के एकनिष्ठ भक्त बन गये। श्री बाबा हर दूसरे दि द्वारकामाई (मस्जिद) मे आकर सोते थे। वहाँ श्री बाबा की कफनी, लुंगी, चिलम और तम्बाकू तथा टीन का एक पुराना लोटा, बस इतना ही सामान रहता था। श्री बाबा सिर पर एक सफेद कपडा कस कर बाँधते थे और उसमें चोटी की भाँति पीछे गाँठ बाँध कर उसे बाये कान के पीछे छोड देते थे ! बैठने के लिए उन्होंने एक फटा-पुराना बोरी का टुकडा रखा था। सामने एक कोने में 'धुनी जलाकर उसी के सम्मुख दक्षिण की ओर मुख करके और बायाँ हाथ द्वारकामाई के कठहरे पर रखकर वे बैठा करते थे। अग्नि देव को प्रसन्न करने के लिये धूनी में निरंतर लकडियाँ जला कर होम-सा किया करते थे। उनके मुख से ''अल्ला मालिक''का निरंतर जप होता रहता था। उस जीर्णशीर्ण दो-खनी मस्जिद का कुछ भक्तों ने सन् १९१२ में जीर्णोद्धार करा दिया। शिरडी गाँव के कुछ वृद्ध निवासियों का कथन है की इस मस्जिद में आसन लगाने से पूर्व श्री साई महाराज 'तकिया' (फारसी-फकीरों की कुटी) में बैठा करते

थे और पैरों में घूँगरू बाँधकर अति उत्कृष्ट नृत्य-गायन किया करते थे।

श्री साई महाराज के प्रमुख निष्काम भक्त-गण में नारायण गोविन्द चांदोरकर का विशिष्ट स्थान था। यह उस समय तहसीलदार के दफ्तर में चिटणीस (चिटनवीस यानी मुहर्रिर) थे। एक दिन कुलकर्णी नामक उनके एक मित्र ने शिरडी से लौटने के उपरान्त उनसे कहा कि श्री बाबा आपसे मिलना चाहते है। पहले तो नानासाहेब चांदोरकरजी ने अपने मित्र के कथन पर कोई विश्वास नही किया, उल्टे उसकी हंसी उडाई। किन्तु कुलकर्णी के शपथ लेकर दृढता से यह करने पर कि, ''श्री बाबा ने आपको बुलाया है।'' वे कृत-संकल्प हो शिरडी की ओर चल पडे। प्रथम भेट में ही नानासाहेब के मन पर श्री साई महाराज का इतना गहरा प्रभाव पडा कि वे उनके अनन्यभक्त बन गए। वे बार-बार शिरडी जाकर श्री बाबा के बोधामृत का पान करने लगे। नानासाहेब की श्री साई मैं जैसी प्रगाढ श्रद्धा थी, वैसी ही श्री बाबा की भी उन पर बहुत कृपा थी। जब नानासाहेब का शिरडी में वास रहता था, तब उनमें और श्री बाबा मे घण्टों तक वार्तालाप हुआ करता था। नानासाहेब विचित्र-विचित्र शंकाएँ उपस्थित करते थे और श्री साई उन्हे समाधानकारक उत्तर दिया करते थे। नानासाहेब का यह दृढ विश्वास था की श्री साई महाराज ने अपनी आयु के प्रथम चरण में ही पर्याप्त स्वाध्याय किया होगा। एक बार जब नानासाहेब 'गीता' का ''तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया''(४/३४)श्लोक गुनगुना रहे थे, तब श्री साई ने सहज स्वभाव से सरल भाषा में एक घण्टें तक इस श्लोक की सुंदर व्याख्या की और इसका अर्थ भली भाँती स्पष्ट करके समझाया। नानासाहेब की शंका का समाधान हुआ और उन्हे यह विश्वास हो गया की श्री बाबा ने 'भगवद्गीता' का भी पूर्ण मनन, अध्ययन किया है। नानासाहेब ने आगे कई वर्षो तक श्री साई महाराज की एकनिष्ठ भाव से सेवा की।

नानासाहेब द्वारा किए गए दो महत्त्वपूर्ण कार्यों के लिए उनका नाम श्री साई महाराज के भक्तों में विशेष रूप से चिरस्मरणीय बना रहेगा। उनका पहला कार्य यह था कि श्री बाबा जिस मस्जिद में बैठा करते थे, वह जीर्णवस्था में भी व नानासाहेब उसकी मरम्मत करवाना चाहते थे। स्वयं उपस्थित हरकर उसकी मरम्मत करवाने के लिए उन्हे अवकाश नही था, इसलिए उन्होने यह कार्य निमोणकरजी के सिपुर्द कर दिया। अपने विचित्र स्वभाव के अनुसार श्री बाबा मस्जिद का जीर्णोद्धार करने की आज्ञा देने को तैयार नही हुए। अन्त में म्हालसापतिजी के विशेष आग्रह पर उन्होंने आज्ञा दे दी। पुरानी मस्जिद गिरा कर नई मस्जिद बनवाने का कार्य आरम्भ हुआ। परन्तु श्री साई महाराज बार-बार बाधा डालने लगे। कभी-कभी वे बना हुआ काम बिगाड देते थे। बडे बडे पत्थर, ईट, चूना इधर-उधर फेंक देते थे। श्री बाबा के इस रहस्यपूर्ण आचरण का केवल इतना ही अर्थ था की वे अपने लिए किसी विशाल, भव्य भवन का पृथक निर्माण करना नही चाहते थे। जो इमारत पुरानी थी,वे उसे ही कुछ ठीक अवस्था में करा देने के पक्ष में थे। अन्त में श्री बाबा की इच्छानुसार ही द्वारकामाई का काम पूर्ण हो गाया।

श्री साई महाराज उस समय नीमगाँव गये हुए थे। वहाँ से भक्त लोक उन्हें बाजे-गाजे के साथ उत्सव मनाते हुए शिरडी ले आये और बडे उत्साह से शुभ मुहूर्त में किसी देवता की भाँति ही द्वारकामाई में श्री बाबा का प्रतिष्ठान किया गया। इस कार्य को पूर्ण करने के लिए बढ्ई कोंडाजी, गवाजी तथा तुकाराम इन तीनों भाईयों ने बडा परिश्रम किया। आगे भी श्री बाबा के समाधि काल तक तुकाराम श्री बाबा की निरंतर सेवा करता रहा। रामनवमी के दिन जुलूस निकालने का प्रथम श्रेय इन्ही लोगों को है। आज भी वह उत्सव वैसे ही प्रचलित है।

नानासाहेब का दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य यह था कि उन्होने श्री साईबाबा

की कीर्ति का सर्वत्र प्रसार किया और दूर-दूर के लोगों को श्री साईबाबा के भव्य व्यक्तिमत्व से परिचित करा दिया। उन्हे अपनी नौकरी के सिलसिले मे भ्रमण आधिक करना पडता था और वे भिन्न-भिन्न गाँवो मे जाया करते थे। जिस गाँव में जाते, वहाँ के लोगों से मिलकर वे उन्हे श्री साईबाबा की लीलाओं तथा उनके अलौकिक सामर्थ्य से अवगत कराते। जिन लोगों के मन में श्री बाबा के प्रति श्रद्धा उत्पन्न होती थी, उन लोगों की वे श्री साई महाराज से भेंट करा देते थे और उन्हे श्री बाबा के आशीर्वाद का लाभ सज ही प्राप्त हो जाता था। नानासाहब के इस कार्य के फलस्वरूप ही बम्बई, पूना,ठाणा इत्यादि नगरों के लोगों में श्री साईबाबा के दर्शन का पुण्य लाभ किया। यही कार्य आगे दासगणू महाराज ने तनिक भिन्न पद्धति से किया।

श्री गणेश दत्तात्रेय सहस्रबुद्धे (दासगणू) महाराज पहले पुलिस के मूहकमे में नोकरी करते थे। गाने-बजाने और तमाशा दिखाने का उन्हें बडा शौक था। एक दिन वह नानासाहेब चाँदोरकर के साथ श्री साई महाराज के दर्शनो के लिए आये। श्री बाबा की कृपादृष्टि का उन पर ऐसा विलक्षण प्रभाव हुआ की उन्होनें अपनी नौकरी से तुरन्त त्याग-पत्र दे दिया। उन्होंने परमेश्वर-भक्ति को अपनाया और कीर्तन एवं कथा के माध्यम से वह सन्तो के कार्य का लोगों मे प्रचार करने लगे। स्वयं भी अत्युत्तम धर्मग्रन्थों की रचना कर दासगणू महाराज ने अत्यन्त ठोस कार्य किया है। महाराष्ट्र में स्थान -स्थान पर कीर्तन का अयोजन कर उन्होंने श्री साई महाराज के गुणगान की पताका सर्वत्र फहरा दी। दासगणू महाराज का यह मंगल कार्य आज श्री पूर्ववत् हो रहा है। श्री साई के हाथों से प्रत्यक्ष आशीर्वाद-प्राप्त और उनका साक्षात्कार किये हुये आज वे ही एकमात्र अधिकारी व्यक्ति है।

एक बार शुभ पर्वकाल आया देखकर दासगणू महाराज के मन मे गंगा-यमुना के संगम पर तीर्थराज प्रयाग में स्नान करने का संकल्प उठा। शिरडी में भक्तों की गतिविधियाँ श्री बाबा की इच्छा के आधीन रहती थी।

गंगा-स्नान के लिए जाने की अनुमति माँगने के अभिप्राय से दासगणू महाराज नम्रता से श्री साई महाराज के पास गये। श्री बाबा ने मधुरस्मृति से दासगणू जी की हँसी उडाते हुए कहा,''अरे पगले ! तीर्थ स्नान के लिय इतनी दूर जाने की क्या आवश्यकता है? अपना प्रयाग तो यही है। परंतु मन में दृढ विश्वास होना चाहिये।'' श्री साई महाराज के इतना कहते ही सचमुच एक अद्‌भुत चमत्कार हुआ। दासगणू महाराज जी ने श्री साई की आज्ञा शिराधार्थ मानकर उनके चरणों पर मस्तक रखा और पलभर में ही श्री साई महाराज के परों के दोनों अंगुठो में से गंगा-यमुना के पवित्र जल का स्रोत सा बहने लगा। यह चमत्कार देखकर दासगणूजी का हृदय भर आया। उनकी आँखो से आँसुओ की धारा बह चली और श्री साई की अगाध लीला देखकर मन की सम्पूर्ण आल्हाद भरी स्थिति में उन्होनें मराठी में एक भक्तिरसपूर्ण पद लिखा, जिसका भाव इस प्रकार है -

अघटित लीला कर दी गुरूजी तुम्हारी शक्ति अगाध।
कृपा-नाव-चढ जीव तैरते जग का जलधि अगाध ।।
तुम्हारी दया यही पर देखा बेणीमाधव तीर्थ प्रयाग।
बही अंगूठों से गंगा-यमुना दोनों मेरा बडभाग ।।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀